श्री राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्र का यज्ञशाला में प्रवेश

चौपाई :

*** सीय स्वयंबरू देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥ लखन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥1॥

भावार्थ:

चलकर सीताजी के स्वयंवर को देखना चाहिए। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं। लक्ष्मणजी ने कहा- हे नाथ! जिस पर आपकी कृपा होगी, वही बड़ाई का पात्र होगा (धनुष तोड़ने का श्रेय उसी को प्राप्त होगा)॥1॥

*** हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥ पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला॥2॥

भावार्थ:

इस श्रेष्ठ वाणी को सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभी ने सुख मानकर आशीर्वाददिया। फिर मुनियों के समूह सहित कृपालु श्री रामचन्द्रजी धनुष यज्ञशालादेखने चले॥2॥

*** रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥ चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥3॥

भावार्थ:

दोनों भाई रंगभूमि में आए हैं, ऐसी खबर जब सब नगर निवासियों ने पाई, तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी घर और काम-काज को भुलाकर चल दिए॥3॥

*** देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी॥ तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू॥4॥

भावार्थ:

जब जनकजी ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गई है, तब उन्होंने सब विश्वासपात्र सेवकों को बुलवा लिया और कहा- तुम लोग तुरंत सब लोगों के पास जाओ और सब किसी कोयथायोग्य आसन दो॥4॥

दोहा :

*** कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥240॥

भावार्थ:

उन सेवकों ने कोमल और नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणी के) स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठाया॥240॥

चौपाई :

*** राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए॥ गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा॥1॥

भावार्थ:

उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आए। (वे ऐसे सुंदर हैं) मानो साक्षात मनोहरता ही उनके शरीरों पर छा रही हो। सुंदर साँवला और गोरा उनका शरीर है। वे गुणों के समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं॥1॥

*** राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥ जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥2॥

भावार्थ:

वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो तारागणों के बीच दो पूर्ण चन्द्रमा हों। जिनकी जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उन्होंने वैसीही देखी॥2॥

*** देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसुधरें सरीरा॥ डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥3॥

भावार्थ:

महान रणधीर (राजा लोग) श्री रामचन्द्रजी के रूप को ऐसा देख रहे हैं, मानो स्वयं वीर रस शरीर धारण किए हुए हों। कुटिल राजा प्रभु को देखकर डर गए मानो बड़ी भयानक मूर्ति हो॥3॥

*** रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा। पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥4॥

भावार्थ:

छल से जो राक्षस वहाँ राजाओं के वेष में (बैठे) थे, उन्होंने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के समान देखा। नगर निवासियों ने दोनों भाइयों को मनुष्यों के भूषण रूप और नेत्रों को सुख देने वाला देखा॥4॥

दोहा :

*** नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज-निज रुचि अनुरूप। जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥241॥

भावार्थ:

स्त्रियाँ हृदय में हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्हें देख रही हैं। मानो श्रृंगार रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण किए सुशोभित हो रहा हो॥241॥

चौपाई :

*** बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥ जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥1॥

भावार्थ:

विद्वानों को प्रभु विराट रूप में दिखाई दिए, जिसके बहुत से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं।

जनकजी के सजातीय (कुटुम्बी) प्रभु को किस तरह (कैसे प्रिय रूप में) देख रहे हैं, जैसे सगे सजन (संबंधी) प्रिय लगते हैं॥1॥

*** सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥ जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥2॥

भावार्थ:

जनक समेत रानियाँ उन्हें अपने बच्चे के समान देख रही हैं, उनकी प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता। योगियों को वे शांत, शुद्ध, सम और स्वतः प्रकाश परम तत्व के रूप में दिखे॥2॥

*** हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥ रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥3॥

भावार्थ:

हरि भक्तों ने दोनों भाइयों को सब सुखों के देने वाले इष्ट देव के समान देखा। सीताजी जिस भाव से श्री रामचन्द्रजी को देख रही हैं, वह स्नेह और सुख तो कहने में ही नहीं आता॥3॥

*** उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥ एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥4॥

भावार्थ:

उस (स्नेह और सुख) का वे हृदय में अनुभव कर रही हैं, पर वे भी उसे कह नहीं सकतीं। फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है। इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश श्री रामचन्द्रजी को वैसा ही देखा॥4॥

दोहा :

*** राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर। सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥242॥

भावार्थ:

सुंदर साँवले और गोरे शरीर वाले तथा विश्वभर के नेत्रों को चुराने वाले कोसलाधीश के कुमार राज समाज में (इस प्रकार) सुशोभित हो रहे हैं॥242॥

चौपाई :

*** सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥ सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥1॥

भावार्थ:

दोनों मूर्तियाँ स्वभाव से ही (बिना किसी बनाव-श्रृंगार के) मन को हरने वाली हैं। करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके लिए तुच्छ है। उनके सुंदर मुख शरद् (पूर्णिमा) के चन्द्रमा की भी निंदा करने वाले (उसे नीचा दिखाने वाले) हैं और कमल के समान नेत्र मन को बहुत ही भाते हैं॥1॥

*** चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥ कल कपोल श्रुति कुंडल

लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥2॥

भावार्थ:

सुंदर चितवन (सारे संसार के मन को हरने वाले) कामदेव के भी मन को हरने वाली है। वह हृदय को बहुत ही प्यारी लगती है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुंदर गाल हैं, कानों में चंचल (झूमते हुए) कुंडल हैं। ठोड़ और अधर (होठ) सुंदर हैं, कोमल वाणी है॥2॥

*** कुमुदबंधु करनिंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥ भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥3॥

भावार्थ:

हँसी, चन्द्रमा की किरणों का तिरस्कार करने वाली है। भौंहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है। (ऊँचे) चौड़े ललाट पर तिलक झलक रहे हैं (दीप्तिमान हो रहे हैं)। (काले घुँघराले) बालों को देखकर भौंरों की पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं॥3॥

*** पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥ रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥4॥

भावार्थ:

पीली चौकोनी टोपियाँ सिरों पर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीच में फूलों की कलियाँ बनाई (काढ़ी) हुई हैं। शंख के समान सुंदर (गोल) गले में मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानो तीनों लोकों की सुंदरता की सीमा (को बता रही) हैं॥4॥

दोहा :

*** कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल। बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥243॥

भावार्थ:

हृदयों पर गजमुक्ताओं के सुंदर कंठे और तुलसी की मालाएँ सुशोभित हैं। उनके कंधेबैलों के कंधे की तरह (ऊँचे तथा पुष्ट) हैं, ऐंड़ (खड़े होने की शान) सिंह की सी है और भुजाएँ विशाल एवं बल की भंडार हैं॥243॥

चौपाई :

*** कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बरकाँधें॥ पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥1॥

भावार्थ:

कमर में तरकस और पीताम्बर बाँधे हैं। (दाहिने) हाथों में बाण और बाएँ सुंदर कंधों पर धनुष तथा पीले यज्ञोपवीत (जनेऊ) सुशोभित हैं। नख से लेकर शिखा तक सब अंग सुंदर हैं, उन पर महान शोभा छाई हुई है॥1॥

*** देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥ हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि

पद कमल गहे तब जाई॥2॥

भावार्थ:

उन्हें देखकर सब लोग सुखी हुए। नेत्र एकटक (निमेष शून्य) हैं और तारे (पुतलियाँ) भी नहीं चलते। जनकजी दोनों भाइयों को देखकर हर्षित हुए। तब उन्होंने जाकर मुनि के चरण कमल पकड़ लिए॥2॥

*** करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥ जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ॥3॥

भावार्थ:

विनती करके अपनी कथा सुनाई और मुनि को सारी रंगभूमि (यज्ञशाला) दिखलाई। (मुनि के साथ) दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित हो देखने लगते हैं॥3॥

*** निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा॥ भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजाँ मुदित महासुख लहेऊ॥4॥

भावार्थ:

सबने रामजी को अपनी-अपनी ओर ही मुख किए हुए देखा, परन्तु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका। मुनि ने राजा से कहा- रंगभूमि की रचना बड़ी सुंदर है (विश्वामित्र- जैसे निःस्पृह, विरक्त और ज्ञानी मुनि से रचना की प्रशंसा सुनकर) राजा प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा सुख मिला॥4॥

दोहा :

*** सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल। मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥244॥

भावार्थ:

सब मंचों से एक मंच अधिक सुंदर, उज्ज्वल और विशाल था। (स्वयं) राजा ने मुनि सहित दोनों भाइयों को उस पर बैठाया॥244॥

चौपाई :

*** प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेश उदय भएँ तारे॥ असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥1॥

भावार्थ:

प्रभु को देखकर सब राजा हृदय में ऐसे हार गए (निराश एवं उत्साहहीन हो गए) जैसे पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने पर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं। (उनके तेज को देखकर) सबके मन में ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी ही धनुष को तोड़ेंगे, इसमें संदेह नहीं॥1॥

*** बिनु भंजेहुँ भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥ अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई॥2॥

भावार्थ:

(इधर उनके रूप को देखकर सबके मन में यह निश्चय हो गया कि) शिवजी के विशाल धनुष को (जो संभव है न टूट सके) बिना तोड़े भी सीताजी श्री रामचन्द्रजी के ही गले में जयमाला डालेंगी (अर्थात दोनों तरह से ही हमारी हार होगी और विजय रामचन्द्रजी के हाथ रहेगी)। (यों सोचकर वे कहने लगे) हे भाई! ऐसा विचारकर यश, प्रताप, बल और तेज गँवाकर अपने-अपने घर चलो॥2॥

*** बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥ तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा॥3॥

भावार्थ:

दूसरे राजा, जो अविवेक से अंधे हो रहे थे और अभिमानी थे, यह बात सुनकर बहु तहँसे। (उन्होंने कहा) धनुष तोड़ने पर भी विवाह होना कठिन है (अर्थात सहज ही में हम जानकी को हाथ से जाने नहीं देंगे), फिर बिना तोड़े तो राजकुमारी को ब्याह ही कौन सकता है॥3॥

*** एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥ यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥4॥

भावार्थ:

काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीता के लिए उसे भी हम युद्ध में जीत लेंगे। यह घमंड की बात सुनकर दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, हरिभक्त और सयाने थे, मुस्कुराए॥4॥

सोरठा :

*** सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के। जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे॥245॥

भावार्थ:

(उन्होंने कहा-) राजाओं के गर्व दूर करके (जो धनुष किसी से नहीं टूट सकेगा उसे तोड़कर) श्री रामचन्द्रजी सीताजी को ब्याहेंगे। (रही युद्ध की बात, सो) महाराज दशरथ के रण में बाँके पुत्रों को युद्ध में तो जीत ही कौन सकता है॥245॥

चौपाई :

*** ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई॥ सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥1॥

भावार्थ:

गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो। मन के लड्डुओं से भी कहीं भूख बुझती है? हमारी परम पवित्र (निष्कपट) सीख को सुनकर सीताजी को अपने जी में साक्षात जगज्जननी समझो (उन्हें पत्नी रूप में पाने की आशा एवं लालसा छोड़ दो),॥1॥

*** जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥ सुंदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी॥2॥

भावार्थ:

और श्री रघुनाथजी को जगत का पिता (परमेश्वर) विचार कर, नेत्र भरकर उनकी छबि देख लो (ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा)। सुंदर, सुख देने वाले और समस्त गुणों की राशि ये दोनों भाई शिवजी के हृदय में बसने वाले हैं (स्वयं शिवजी भी जिन्हें सदा हृदय में छिपाए रखते हैं, वे तुम्हारे नेत्रों के सामने आ गए हैं)॥2॥

*** सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजलु निरखि मरहु कत धाई॥करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा॥3॥

भावार्थ:

समीप आए हुए (भगवत्दर्शन रूप) अमृत के समुद्र को छोड़कर तुम (जगज्जननी जानकी को पत्नी रूप में पाने की दुराशा रूप मिथ्या) मृगजल को देखकर दौड़कर क्यों मरते हो? फिर (भाई!) जिसको जो अच्छा लगे, वही जाकर करो। हमने तो (श्री रामचन्द्रजी के दर्शन करके) आज जन्म लेने का फल पा लिया (जीवन और जन्म को सफल कर लिया)॥3॥

*** अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥ देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥4॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर अच्छे राजा प्रेम मग्न होकर श्री रामजी का अनुपम रूप देखने लगे। (मनुष्यों की तो बात ही क्या) देवता लोग भी आकाश से विमानों पर चढ़े हुए दर्शन कर रहे हैं और सुंदर गान करते हुए फूल बरसा रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ। चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं ि◌लवाइ॥246॥

भावार्थ:

तब सुअवसर जानकर जनकजी ने सीताजी को बुला भेजा। सब चतुर और सुंदर सखियाँ आरदपूर्वक उन्हें लिवा चलीं॥246॥